private companies. Most of them are doing that work, not since today, but since the Act was passed, when the committee—it was not Government which said that—decided not to extend this facility to them. Some of them might be unemployed, but it is not a case of a calamity that all of them are unemployed. They are doing that work, they are not auditing public or statutory companies, but they are auditing private companies, which are quite numerous.

Shri B. N. Misra (Bilaspur—Durg—Raipur): On a point of order. Is it in accordance with the rules that the hon. Parliamentary Secretary should reply, then the Mover says something, then again the hon. Parliamentary Secretary says something, then again the Mover will say something, and so on? Can it go on like this?

Mr. Chairman: The Mover has the right of reply. It was done with the permission of the Chair. So, it was all right. After the speech of the hon. Parliamentary Secretary, the hon. Mover had the right of reply.

Shri C. R. Narasimhan: I would only say this much, and will not interrupt again, even if the hon. Parliamentary Secretary interrupts.

Even if there is one case of injustice to be rectified, irrespective of whether it happened many years ago or not, it is the duty of Parliament to go into the matter and rectify the mistake or injustice. There is a precedent for this in the English Parliament. There is the well-known case of the Mountbatten's estate, in respect of which the Parliament of Great Britain passed a law. A similar thing could be done here also.

Shri B. R. Bhagat: But there is no injustice done.

Shri S. V. Ramaswamy: I beg leave of the House to withdraw my amendment.

The amendment was, by leave, withdrawn.

Mr. Chairman: What about the original Motion? Is the hon. Mover pressing it, or is he withdrawing the Bill?

Shri C. R. Narasimhan: I beg to move:

"That leave be granted to withdraw the Bill."

Mr. Chairman: The question is:

"That leave be granted to withdraw the Bill."

The motion was adopted.

Mr. Chairman: So, the Bill is withdrawn by leave of the House.

CODE OF CRIMINAL PROCEDURE (AMENDMENT) BILL

(Amendment of section 435)

श्री रघुनाथ सिंह (जिला बनारस—मध्य): मैं प्रस्ताव करता हूं कि क्रिमिनल प्रोसीज्यौर कोड, १८६८ (दंड प्रक्रिया संहिता, १८६८) में और आगे संशोधन करने वाले बिल पर विचार किया जाये।

जो बिल मैं ने आप के सामने उपस्थित किया हैं वह इस कारण से उपस्थित किया हैं कि क्रिमिनल प्रोसीज्यौर कोड में दोनों तरह के अधिकार एंक्यूज्ड को या एंग्रीव्ड पार्टी को दिये गये हैं। अदालत को रिवीजन का भी अधिकार दिया गया हैं और रिफरेन्स का भी साथ ही साथ इस के सेक्शन ४६१ के मातहत कोर्ट को यह इन्हेरेन्ट पावर हैं कि वह जैसा चाहे फैसला दे सकती हैं। लेकिन समस्या इस प्रकार उपस्थित हुई कि सन् १९५२ में इलाहाबाद हाई कोर्ट ने एक रूलिंग दी जो कि आल इंडिया रिपोर्टर के ४९८ पेज पर कोटेड हैं। उस रूलिंग के कारण जिस में कि कलकत्ता हाई कोर्ट की सन् १९४६ की रूलिंग भी कोटेड हैं एक बड़ी विचित्र समस्या उपस्थित हो गई। रिवीजन और अपील का अधिकार हाई कोर्ट

[श्री रघुनाथ सिंह]

और सेशन जज दोनों को हैं। जहां पर सेशन ट्रायल होता था उस के रिवीजन और अपील का अधिकार हाई कोर्ट को होता है लेकिन मैजिस्ट्रेट्स के यहां जो ट्रायल होते हैं उन के रिवीजन और अपील का अधिकार सेशन जज को दिया गया है। प्रस्तुत कोड के सेक्शन ४३५ के शब्द "सेन्टेन्स और आर्डर" प्रयुक्त हैं। लेकिन अन्तिम दो लाइनों को आप देखें तो आप को पता चलेगा कि उस में "सेन्टेन्स" शब्द का तो प्रयोग किया गया, लेकिन "आर्डर" शब्द का प्रयोग नहीं। अर्थात् रिवीजन सेन्टेन्स के खिलाफ तो हो सकता है लेकिन अगर रिवीजन कराने वाला अदालत के सामने यह मूव करे कि फैसला लोअर कोर्ट के फैसले का निफाज न किया जाय, तो उसका अधिकार सेशन अदालत को नहीं है उस को स्टे किया जाय। इस स्थिति के कारण विचित्र समस्या उपस्थित हुई है। अगर "सेन्टेन्स" शब्द के साथ "आर्डर" शब्द जोड़ दिया जाय तो यह समस्या हल हो सकती है। फौजदारी में दो ही चीजें हो सकती हैं। "सेन्टेन्स" के माने यह होते हैं कि इम्प्रिजनमेन्ट या जुर्माना। लेकिन समरी ट्रायल के अपील या रिवीजन सुनने का अधिकार सेशन कोर्ट को नहीं होता। हाई कोर्ट ही उस में इन्टरफिअर कर सकता है। सेशन कोर्ट को अपेलेट अधिकार सिर्फ ५० रुपये तक के जुर्माने का है। अगर किसी आदमी के ऊपर ४९ रु० फाइन हो गया तो उस की रिमेडी हाई कोर्ट में ही हो सकती है। अगर एक आदमी ने चोरी की और उस के पास कुछ प्रापर्टी मिली कोर्ट ने चोर को छोड़ दिया। लेकिन साथ ही साथ उस ने आर्डर दिया कि प्रापर्टी को भी उस को लौटा दिया जाय। एक्विटल के खिलाफ हाई कोर्ट में अपील हो सकती है। लेकिन एक रिवीजन का भी हमें राइट है। हम सेशन कोर्ट में मूव करें कि इस चोर के खिलाफ मैं अपील कर रहा हूं और फैसला डिलिवरी आफ प्रापर्टी को रोक दिया जाय, अगर चोर को प्रापर्टी की डिलिवरी फिर भी लोअर कोर्ट के आदेशानुसार दे दी गई तो चोर उस प्रापर्टी को ले कर भाग जायेगा। उस के बाद कोई रिमेडी नहीं रह जाती। इसलिये मेरा सिर्फ एक शब्द का संशोधन है। मैं समझता हूं कि इस पार्लियामेन्ट का यह सब से पहला और सब से छोटा संशोधन है। यह संशोधन है कि "सेन्टेन्स" शब्द के बाद "आर्डर" शब्द और जोड़ दिया जाय।

मैं आप को बताऊं, कि इलाहाबाद हाई कोर्ट ने जो व्यू लिया है वह श्री हरिशचन्द्र साहब की सिंगल बेंच में लिया गया है। अब तक सेशन जज यह करते थे कि मान लिया कोई सेन्टेन्स नहीं है, कोई आर्डर है, जैसे १४५ का आर्डर है कि अटेचमेन्ट किया जाय जिसे लोअर कोर्ट ने जारी कर दिया। मैं एग्रीव्ड हूं। मैं इस अटेचमेन्ट आर्डर के खिलाफ यह मूव कर सकता हूं कि यह रांगफुल अटेचमेन्ट हुआ है लिहाजा इसे हटाया जाय। लोअर कोर्ट ने कोई आर्डर पास कर दिया तो उस आर्डर के खिलाफ मैं सेशन जज के यहां मूव कर सकता हूं चूंकि लोअर कोर्ट का आर्डर ठीक नहीं है इसलिए जब तक सेशन कोर्ट का फैसला उस पर न हो जाए तब तक लोअर कोर्ट की आज्ञा को स्टे किया जाए। लेकिन इलाहाबाद हाई कोर्ट की जो रूलिंग हुई है जिसमें कि कलकत्ता हाई कोर्ट की सन् १९४९ की रूलिंग का हवाला दिया गया है, उसके कारण यह समस्या उपस्थित हुई कि कोई भी लोअर कोर्ट अगर कोई आर्डर पास कर देता है तो उसके खिलाफ सेशन कोर्ट स्टे आफ प्रोसीडिंग्स नहीं कर सकता। उस आर्डर के खिलाफ कोई सुनवाई करने का अधिकार उसको नहीं होता। अगर कोई अधिकार होता है तो सिर्फ रिवीजन के सम्बन्ध में। अगर उसका कोई केस बनता है तो वह उसको सुन सकता है। अब मैं आपको मिसाल दूं। जिन केसों में अपील होती है उनमें यह समस्या

उपस्थित नहीं होती। क्योंकि सेशन कोर्ट को यह हक है कि अपैलेट केस में अगर वह चाहे तो आर्डर पास कर सकता है। स्टे आफ सेन्टेन्स कर सकता है। स्टे आफ दि फाइन कर सकता है। स्टे आफ दि अटैचमेंट कर सकता है। लेकिन सब से विकट समस्या उस समय पैदा होती है जिसकी मैं आपको एक मिसाल देता हूं। हमारे यहां १०० सी० आर० पी० सी० की एक धारा है इसके अन्दर बहुत दिक्कत पैदा हो जाती है। मैं लोअर कोर्ट के वकील के पाइंट आफ व्यू से बात कर रहा हूं। जिस जगह पर बड़ी मुश्किल पड़ती है। उसी की तरफ मैं आपकी दृष्टि ले जाना चाहता हूं। दफा १०० के माने हैं कन्फाइनमेंट। अगर किसी आदमी को कोई आदमी रोक ले तो होता यह है कि मैजिस्ट्रेट के सामने एंग्रीव्ड पर्सन जाता है। कहता है कि फलां आदमी ने फलां आदमी को रोक लिया है। वह आदमी फलां स्थान पर है। लिहाजा हमें सर्च वारंट दिया जाए ताकि हम उसे कोर्ट के सामने ला सकें। यू० पी० में इस तरह के केसेज स्त्रियों के सम्बन्ध में या एब्डक्शन के सम्बन्ध में होते हैं। जैसे कोई भगाई हुई स्त्री हो, उसके सम्बन्ध में यह होता है कि लोअर कोर्ट में यह मूव कर दिया जाता है कि सेक्शन १०० के अन्दर वारन्ट दिया जाए ताकि स्त्री को लाया जा सके। लेकिन अगर लोअर कोर्ट रांगफुल आर्डर, जिसकी कोई बुनियाद नहीं है, दे दिया, तो सेशन कोर्ट में मूव कर के वहां से कोई रेमेडी नहीं पाई जा सकती।

एक स्त्री बेचारी है। वह पकड़ कर आती है और आने के पश्चात् लोअर कोर्ट उसको आर्डर कर देता है कि जब तक कि फैसला न हो तुम अनाथालय में रहो, या अपने पिता के पास रहो, या अपने किसी सम्बन्धी के पास रहो, तो उस बेचारी गरीब क्लायेंट को, जिसको अब तक सेशन कोर्ट में रेमेडी प्राप्त थी, हाई कोर्ट जाना पड़ेगा। आप समझ सकते हैं कि किसी गरीब के लिए हाई कोर्ट में जाना, जहां पर कि १०० रु० तो सिर्फ वकील की फीस है, फिर कोर्ट फीस है, कितना मुश्किल है। एक छोटी सी चीज के लिए जिसे सेशन कोर्ट कर सकता है, और जिसके लिए बहुत से हाई कोर्ट्स जैसे लाहौर हाई कोर्ट, नागपुर हाई कोर्ट, बम्बई हाई कोर्ट, मद्रास हाई कोर्ट इन सब का व्यू है कि सेशन कोर्ट को यह हक है कि वह आर्डर के खिलाफ स्टे आर्डर पास कर सके और गरीब मोवक्किल को हक है कि वह सेशन कोर्ट से रेमेडी पाए उसके लिए उस गरीब को उत्तर प्रदेशादि स्थानों में हाई कोर्ट जाना पड़ेगा। इलाहाबाद और कलकत्ता हाई कोर्ट्स की रूलिंग की वजह से वह दिक्कत पैदा होती है कि जो चीज सेशन कोर्ट में हो सकती है उसके लिए हम को हाई कोर्ट जाना पड़ता है।

दूसरी मिसाल मैं दूं। धारा १२२ में नुइसेंस के केस होते हैं। नुइसेंस के केस में ज्यादातर क्या होता है? वह केसेज ऐसे होते हैं। जैसे कि मेरा घर है। मेरे पड़ोसी का घर है। मैंने अपने घर में से नाली निकाली। उससे पानी बह रहा है। या कोई नाले का पानी है। उस पानी को मैंने रोक दिया। मेरे पड़ोसी ने अदालत को मूव कर दिया। धारा १२२ के अन्दर जब मैं अदालत के सामने जाता हूं तो अदालत यह आर्डर इश्यू कर देती है कि जो नाली है या परनाली है, जिस से कि पानी जाता है, उसे बन्द कर दिया जाए। अदालत के आर्डर से मेरे मकान की नाली बन्द हो गई। परनाला बन्द हो गया। उसके जरिए जो पानी जाता था वह भी बन्द हो गया। अब मैं क्या कर सकता हूं? जो हमारा पानी जाना बंद हुआ तो उससे मेरे आंगन में पानी भरना शुरू हो गया। पाखाने में पानी भरना शुरू हो गया। ओलती का पानी जाना बन्द हो गया। अब मेरे सामने एक ही चारा रह गया कि मैं हाई कोर्ट जाऊं। अब तक यह होता था कि दफा १२२ के मातहत नुइसेंस के केसेज में चूंकि रिवीजन का राइट है, इसलिए हम सेशन कोर्ट के पास जा सकते थे। कह सकते थे कि जब तक इस मुकदमे का फैसला न हो तब तक जो हमारी नाली का पानी जाता है। ओलती का पानी जाता है। वह चालू रहे, इस में कोई नाजायज चीज नहीं थी।

[श्री रघुनाथ सिंह]

लेकिन हाई कोर्ट की रूलिंग के कारण अब यह बात नहीं हो सकती।

इसके बाद दफा १४५ को देखिए। यह सेक्शन ऐसा है कि शायद बहुत कम आदमी हिंदुस्तान में ऐसे होंगे जो कि इस के दायरे में न आए होंगे। सिविल कोर्ट से कोई रेमेडी न ले कर फौजदारी के द्वारा किसी चीज की रेमेडी प्राप्त करने का यही एक जरिया है। जैसे एक खेत है। खेत जोतने का समय आ गया। हम जून में खेत जोतते हैं। मान लीजिए कि असाढ़ में धान का बीज बोने का समय आ गया। लेकिन एक आदमी ने दफा १४५ में लोअर कोर्ट में एक इस्तगासा दायर कर दिया। खेत का मालिक वह है। इसको वह जोतता है। लिहाजा उसे जोतने का अधिकार होना चाहिए। लोअर कोर्ट ने आर्डर दे दिया कि जब तक कि मुकद्दमे का फैसला न हो जाए—खेत अटैच्ड रहे। आप समझ सकते हैं कि अभी तो धान बोने का समय है। पानी बरस रहा है। अगर इस में दस दिन की भी देरी हो जाए तो खेत बिल्कुल बेकार हो सकता है। लेकिन कोर्ट ने तो आर्डर दे दिया कि खेत अटैच हो गया, इसके खिलाफ हम क्या कर सकते हैं? इसके खिलाफ हम जाएंगे हाई कोर्ट। एक बीघा खेत में कुल २० रुपए का तो धान पैदा होगा, और हाई कोर्ट जाने के वास्ते हम को २०० रु० खर्च करना पड़ेगा। साथ में जब तक हम वहां पहुंचेंगे, और वहां से स्टे-आर्डर ले आएंगे तब तक खेत को बोने का समय समाप्त हो जाएगा।

श्री बी० एन० मिश्र (बिलासपुर—दुर्ग—रायपुर): यह आपका कहना कब के लिए है? क्या अमेंडमेंट के बाद भी?

श्री रघुनाथ सिंह: जस्ट टुडे। अभी तो वही ला है। मेरे सामने इलाहाबाद हाई कोर्ट की १९५२ की रूलिंग सेक्शन १४५ के बारे में है। एक केस में लोअर कोर्ट ने किसी प्रापर्टी के अटैचमेंट का आर्डर दिया। उस शख्स ने सेशन्ज कोर्ट को मूव किया कि यह आर्डर गलत है। इसलिए इसको स्टे किया जाए। वहां से यह केस हाई कोर्ट तक गया और इलाहाबाद हाई कोर्ट ने होल्ड किया कि चूंकि इस में "आर्डर" शब्द नहीं है, इसलिए सेशन को अधिकार नहीं है इसको स्टे करें। फल यह हुआ कि सेक्शन १४५, जो कि एक साधारण सा सैक्शन है और जिसका सम्बन्ध हर लिटिगेंट से रोज पड़ता है, के लिए लोगों को हाई कोर्ट तक जाना पड़ेगा। हमारे लायक दोस्त ने अभी कहा है कि सी आर० पी० सी० में एक नई अमेंडमेंट हुई है कि इस बारे में सिविल कोर्ट को रेफर किया जाएगा। लेकिन वह अमेंडमेंट अभी हमारे सामने कानून रूप में नहीं आया है। आज स्थिति यह है कि लोअर कोर्ट्स प्रति दिन आर्डर्स पास करती हैं।

इसी तरह मान लीजिए कि हमने एक डाके का इस्तगासा दायर किया और कहा कि हमारे यहां डाका पड़ा है और उसमें हमारे जेवरात चले गए हैं। पुलिस केस नहीं चलाना चाहती है। मातहत अदालत में इस्तगासा दाखिल होता है। कोर्ट उस कम्प्लेंट को ले लेती है। उस पर विचार करने के बाद उसको खारिज कर देती है। जैसा कि अस्सी परसेंट प्राइवेट कम्प्लेंट्स में होता है। वह आर्डर पास कर देती है कि "एक्यूज्ड डिस्चार्ज्ड। प्रापर्टी शुड बी डिलिवर्ड टु देम" अर्थात एक्यूज्ड को छोड़ दिया जाए और प्रापर्टी—जेवरात लौटा दिए जाएं। सी आर० पी० सी० में यह भी प्राविजन है कि सेशन्ज कोर्ट में इसके विरुद्ध रिविजन का अधिकार है। लेकिन सेशन्ज कोर्ट को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि रिविजन सुनने तक वह हमारी प्रापर्टी को—हमारे जेवरात को—रोक ले, जो कि डकैत के घर से रिकवर हुए हैं। इसका फल यह होता है कि रिविजन का फैसला जो कुछ भी हो, हमारे जेवरात वापिस चले जाएंगे और डाकू उसे खा जाएंगे। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए यह संशोधन बहुत ही आवश्यक है।

एक सैक्शन में आपके सामने रखूंगा और वह है सैक्शन १४४। यह एक ऐसा सैक्शन है, जिसका इस्तेमाल बहुत होता है। मिसाल के तौर पर समझ लीजिए कि एक गांव में चार आदमी रहते हैं। उनमें से एक यह एप्लिकेशन

दे देता है कि ये लोग रात को मेरे घर में डाका डालना चाहते हैं और मुझ को इनसे जानो-माल का डर है और नुक्से-अमन का खतरा है, लिहाजा इन लोगों के ऊपर कार्यवाही की जाए। उस स्थिति में होगा क्या? जो इस तरह के आर्डर होते हैं, वे एक्स-पार्टी आर्डर होते हैं, इसलिए उन्होंने सेक्शन १४४ के मातहत आर्डर इशू कर दिया -- चाहे वह लाफुल हो या अनलाफुल। बाकी तीन आदमी लोअर कोर्ट को मूव करते हैं कि जो आर्डर इशू किया गया है, वह रांग है, उस पर विचार किया जाए। लोअर कोर्ट नहीं मानती है। तब वे सेशन्ज कोर्ट में जा सकते हैं----रीविजन कर सकते हैं और रिविजन का फैसला साल भर से पहले नहीं होता है। अगर वह खुदा-न-ख्वास्ता हाई कोर्ट तक पहुंच जाए, तब तो तीन साल से पहले फैसला नहीं होता है। इस प्रकार के न्याय से कोई फायदा नहीं होगा। लिहाजा अगर हम सेशन्ज जज को अपील और रिविजन का राइट देते हैं, तो उनको सेंटेंस के सस्पेंशन के साथ ही साथ आर्डर्ज स्टे करने का भी राइट देना चाहिए। मैं समझता हूं कि हमारे सेशन्ज जज साहबान इतने नालायक नहीं हैं कि वे लोअर कोर्ट्स द्वारा पास किए गए आर्डर्ज के विषय में फैसला न कर सकें। आज सेशन्ज जज हैंग कर सकता है और काले पानी की सजा दे सकता है, लेकिन उसको लोअर कोर्ट्स द्वारा पास किए गए आर्डर्ज को स्टे करने का अधिकार नहीं है। हम समझते हैं कि हमारे हिन्दुस्तान की जुडिशरी बड़ी इम्पार्शियल है और उसने बहुत अच्छा काम किया है और इसके लिए सारे हिन्दुस्तान को गर्व है। मैं आप से अर्ज करना चाहता हूं कि इस संशोधन को अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

मैं आपके सामने एक और एग्जाम्पल रखूंगा। आपने देखा होगा कि हमारी पार्लियामेंट में सवाल नम्बर ४२० पूछते समय "चार सौ बीस" का उच्चारण करने में लोग हिचकते हैं। सैक्शन ४०६ से लेकर सैक्शन ४२० तक के सैक्शन्ज एम्बैजलमेंट आफ प्रापर्टी और मिस-एप्रोप्रिएशन आफ प्रापर्टी के बारे में हैं। मान लीजिए कि हम ने एक कम्प्लेंट फाइल की कि हमने इतना सोना फलां आदमी को रखने के लिए दिया उसने उसमें अमानत में खयानत की है, लिहाजा वह हमको वापिस दिलाया जाए। या यह समझ लीजिए, सभानेत्री जी, कि आप अपनी सोने की चेन--सोने की संकली--किसी सुनार को ठीक करने के लिए देती हैं और वह सुनार उसे न दे, तो आप क्या करेंगी? करना यह होगा कि सैक्शन ४०६ से लेकर सैक्शन ४२० तक के मातहत कम्प्लेंट फाइल करनी होगी कि सुनार मेरी चेन को वापिस नहीं करता और उसे "खा" जाना चाहता है। आपने कम्प्लेंट फाइल की और आपकी वह सोने की चेन कोर्ट में आ गई। आप समझती हैं और कोर्ट भी समझती है कि वह चेन आपकी ही है, लेकिन केस में कोई लैकुना रह गया और कोर्ट ने फैसला कर दिया "दि केस इज नाट प्रूव्ड। दि एक्यूज्ड इज डिस्चार्ज्ड एंड दि प्रापर्टी बी डिलिवर्ड"। अब आपके पास क्या रेमेडी है। एक्यूज्ड छोड़ दिया गया प्रापर्टी उसको दे दी गई। आपकी सोने की चेन उसके पास चली गई। आपके पास सिर्फ एक ही राइट है कि आप उसके डिस्चार्ज के खिलाफ सैशंस कोर्ट को रिविजन के लिए मूव कर सकते हैं और कह सकते हैं कि यह आदमी जो डिस्चार्ज हुआ है यह रौंगफुल डिस्चार्ज है और यह सोने की चेन मेरी है इसलिए इस केस को देखा जाए और इस पर चार्ज लगाकर इसका फैसला किया जाए। लेकिन इसी अर्से में सोने की जो चेन है वह तो उसको लेकर गायब हो गया और सैशंस कोर्ट को चाहे आप के साथ पूरी सहानुभूति है और वह समझती है कि आप ईमानदारी के साथ कोर्ट में आई हैं लेकिन फिर भी वह मजबूर है। एक्यूज्ड साहब तो बेनिफिट आफ डाउट में छूट गए, और इसके लिए अगर कोई रेमेडी है तो वह एक ही है कि आप रिविजन फाइल करें और साल के बाद या दो साल के बाद उसकी बारी आए और तब तक आप इंतजार करें।

इन शब्दों के साथ मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप कृपा करके इस संशोधन को स्वीकार करें।

Mr. Chairman: Motion moved:

"That the Bill further to amend the Code of Criminal Procedure, 1898, be taken into consideration."

Shri Tek Chand (Ambala-Simla): It is my pleasure and privilege to rise today under your gracious auspices, Madam. The Bill that my hon. friend has presented is very important and it indicates certain lacunae in the Code of Criminal Procedure which deserve to be remedied at the earliest. It is not a controversial measure in any form. It lays down certain salutary principles whereby the courts of the land are being further and better armed and fortified in order to render effective justice. There is an impression among the lay public that criminal courts' powers are confined to either punishing the guilty or acquitting those who have been falsely accused or falsely charged of having committed a criminal offence. In short, the view that has gained ground is that the exclusive and the only function of the courts of criminal law in this country is to punish the guilty or acquit the innocent.

But, there are certain complementary functions of the criminal courts and unless they are effectually armed with certain powers, powers which are incidental, powers which are necessary, they will not be in a position to exercise them in accord with the dictates of fairplay, in accord with the requirements of justice.

My hon. colleague who has just resumed his seat has given a number of very apt illustrations. He seeks amendment of section 435. Section 435 relates to the criminal jurisdiction of certain courts in this country including the High Court, and courts of the Sessions Judge, the District Magistrate and of the Sub-Divisional Magistrate etc. If a person has been wrongly convicted, the powers that are exercisable by these courts are vast enough whereby relief can be given to the wrongly convicted person. But when it comes to other powers no less important under section 435, the courts appear to be absolutely helpless. There are a number of cases where the criminal courts function, seemingly perhaps, as civil courts but not really so. I will give you a few illustrations that will clarify the point I wish to make out. Whenever there is a criminal case involving stolen property, there are two important considerations for the court. One important consideration is, is the alleged thief a guilty person or is he guilty as receiver of stolen property. The second consideration involed is is the property found in his possession the property of the complainant. I will perhaps clarify this point with an illustration. Supposing you are possessed of valuable jewellery—I should not have said supposing you are possessed, you have—supposing some theft has taken place or it has been mislaid and that jewellery has been found later in the possession of a person who is strictly not the owner of the jewels, who is, at the same time not a thief and who is not even the receiver of stolen property knowing it to be such, what happens in a court of criminal law. That person is acquitted either by saying that he was not the thief or by saying that somebody, *viz.* the police or others have left it in his trunk, and it is proved to the conviction of the court that the property was not in his possession out of deliberate pilferage nor was he the receiver of stolen property. The man is acquitted and then there is the law whereby a person charged of being a thief or of having stolen property if he is acquitted is ordinarily entitled to be restored to whatever property was found in his possession. The property found in the possession of an innocent person is returnable to him after the conclusion of the case in the court of the Magistrate. Then what happens. He thinks, 'I am not going to go to jail any longer and this property happens to be with me. I will convert it into ingot or gold and I will sell the gold'. You may be the rightful owner of the property, but, in the meanwhile, through the incompetence of law, through the inefficien-

cy of the procedure, a property which is genuinely yours, you cannot lay your hands on.

Let us suppose the Magistrate, rightly or wrongly, directs that that property be handed over to the innocent man from whose possession it had been taken, what happens? you lose your property and he makes a wrongful gain. You run to the Court of Sessions in revision. It may be on two grounds. You say this man is really guilty but he has been wrongly acquitted; let him go behind the bars. The chances of your success are very remote. You have also a right to say, 'he has been acquitted rightly or wrongly, but I am in a position to demonstrate that the property recovered from his possession is really mine'. You have a right to tell the Sessions Judge, 'pray, attach this property and keep it in court's custody; do not hand it over to this man till you have given me a fair opportunity to prove that I am the owner of the property'. And, the Sessions Judge, with all his sympathy, with all his knowledge and understanding, is not in a position to assist you because the moment you show him section 435, all that he can say is. 'I have a right to interfere in the question of sentence but I cannot pass an *ad interim* order regarding the safe custody of this property.'

I am competent to give a judgment whether this man is guilty or this man is innocent, but so far as the use, or removal or conversion of the property is concerned, even if having a feeling that it is yours, I cannot help you in the matter. This Bill which my hon. colleague on my left has presented intends to remove that lacuna which until it is removed can lead to injustice.

Take another instance. Under section 488 it is the function of the criminal court to order a husband who does not maintain his loyal wife by suitable maintenance. It is its function to order a father who does not maintain his children that they should be maintained. It may be that the wife has successfully obtained maintenance and is not really worthy of receiving maintenance because of certain serious lapses, certain infidility on her part. The husband is competent to move the higher court on the ground either that she is not entitled to maintenance or the amount of maintenance is excessive. In the meanwhile, the wife takes out attachment of the property of the husband which goes under the hammer, which is being auctioned. The innocent husband, or the innocent father may run to the court of session and say. "Please reduce the amount of maintenance." He can say that maintenance is not deserved. These pleas may be open. But he cannot tell Session Judge: "Before you are in a position to decide the matter—it may take six months, or a year—my property is about to be sold, my property is under attachment; please stay in the meanwhile the order for the sale, for the auction of that property of mine. If I am not able to make out my contention successfully, by all means go ahead with the attachment, but if I am successful, then this attachment ought not to be there." Yet, this Sessions Court with the best of understanding and sympathy, is absolutely helpless in the matter; cannot give any kind of succour to an innocent party.

Take another instance: under section 133, cases of nuisance. It is usual among litigious people, vindictively inclined towards their neighbours, to lodge all sorts of false, frivolous complaints on the strengths of an accusation that "my neighbour has committed a serious nuisance. He has constructed a wall, he has dug in a trench." Maybe that he has done so on his own land and the court orders: "Very good, this wall is going to be demolished." This building that he

[Shri Tek Chand]

has raised on his land is going to be dismantled. The unsuccessful party in the lower court wants to try its luck in the higher court and he is out to demonstrate that he has not committed a nuisance, or there is no unlawful obstruction. But before he can conclusively establish his contention what happens is that the wall for which he is fighting for is demolished. The Magistrate has ordered demolition of the wall; the court of appeal is yet examining the matter and he wants to tell the court of appeal that pending the decision on his appeal let the *status quo ante bellum* may remain. "Do not in the meanwhile interfere with the present state of affairs; do not in short order demolition of my wall; please order that the order of demolition may remain suspended." The law as it is lays down to the court of appeal: "You may decide the main case, but you cannot pass an *ad interim* order because it is not a sentence of punishment."

Similarly, I can multiply number of cases, but perhaps the best example I can give is of a search warrant. Search warrant is a tactic usually resorted to with a view to humiliate, disgrace, embarrass, somebody, who is in better circumstances, because it carries a certain moral stigma, it carries a certain moral turpitude. Usual ly the allegations are that Mr. A has at his house an abducted girl or abducted person. The girl may be in the house of the father. I have known, and I am sure my colleagues in the legal profession must have done a number of cases where a disgruntled, cruel, greedy son-in-law after having tormented his wife has driven her to seek shelter with her father and she declines to go back to the husband, because if she did she will be tortured, she will be belaboured, she will be assaulted. The father gives her shelter; the father gives her protection. This greedy, cruel son-in-law has only got to go to the court of a magistrate with an allegation that his wife has been abducted, that she has been removed and is being kept by so and so, without disclosing the fact that so and so happens to be the father. What happens? The mischief is there. A criminal complaint has been lodged and the father appears in a criminal court of law to face an allegation that his child, his flesh and blood, to whom he is giivng protection and succour and it is the duty of this son-in-law of his to help, that he is the keeper of an abducted child of his in his own house. If he were to run post haste to a superior court with a request: "For Heaven's sake don't grant this search order. This child is mine; these are the circumstances", the superior court will say: "Very good, I will examine whether you are guilty or not, later. But if you want that this search warrant should be withdrawn, and I should pass an order with respect to this search warrant, I am absolutely helpless. You may be the father, you may be a very respectable gentleman, holding a very reputable position in society, but I am not in a position to help you because the good of Criminal Procedure has made me helpless."

5 P.M.

Then, take another case. I think the most notorious cases not only because of their frequency, but also of their nuisance value are cases under section 145. Usually, it is a very costly process to establish title in a court of civil law. You have got to pay court fees, you have to engage lawyers, you have to produce evidence and the case is usually prolonged. What happens is....

Mr. Chairman: He may continue on the next day.

The Lok Sabha then adjourned till Eleven of the Clock on Saturday, the 30th April, 1955.